ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

राममनोहर लोहिया का सामाजिक चिन्तन

डॉ. मो. खलिकुर रहमान
पीएच. डी. (राजनीति विज्ञान)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सारांश

भारत के समाजवादी आन्दोलन में डॉ0 राममनोहर लोहिया का स्थान महत्वपूर्ण है। वे आजीवन अपने विचारों और मान्यताओं के लिए संघर्ष करते रहे, प्रकृति से निर्भीक और पराक्रमी लोहिया सुकरात की परम्परा के थे जैसे सुकरात अपने विचारों के प्रचार के लिए एथेंस की गलियों में घूमता हुआ बालक, युवा, वृद्ध सभी से न्याय, धर्म, कानून की बातें करता रहता था, उसी प्रकार लोहिया देश विदेशों में, शहरों, कस्बों और मुहल्लों में, समता, शोषण और उत्पीड़न का विरोध, रंगभेद, नारी का सम्मान, जाति–प्रथा आदि मुद्दों पर बहस छेड़ा करते थे, उनका व्यक्तित्व सशक्त और स्वभाव सरल था। वे आजीवन संघर्षशील रहे, समाजवादी आन्दोलन में उनका बहुत बड़ा योगदान रहा है। संसद सदस्य के रूप में लोहिया ने कई बुनियादी प्रश्न उठाये। तीन आने और पन्द्रह आने का विवाद भारत की गरीबी की यथार्थ तस्वीर सामने रखने वाला था। लोहिया के चौखम्भा राज्य का विचार, सप्त क्रान्तियों का आवहान तथा कई अन्य सामाजिक और आर्थिक सुझाव यद्यपि कुछ प्रश्नों को उठाते हैं तथा वे व्यवाहरिक कठिनाइयों से पूर्ण हैं तथापि उनमें एक नई दृष्टि और विचार मिलते हैं। हम डॉ0 लोहिया के विचारों को स्वीकार कर सकते हैं अथवा अस्वीकार कर सकते हैं पर उनकी अपेक्षा नहीं कर सकते। समाजवादी चिन्तन में डॉ0 लोहिया का योगदान महत्वपूर्ण है। उन पर मार्क्स का उतना नहीं जितना गाँधी जी का प्रभाव देखने को मिलता है। उन्होंने ऐसी कई दृष्टि से समाजवादी चिन्तन को देखने और कार्यान्वित करने का प्रयास किया। उनका चिन्तन व्यापक था।

◆◆◆

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

राममनोहर लोहिया का सामाजिक चिन्तन

डॉ. मो. खलिकुर रहमान
पीएच. डी. (राजनीति विज्ञान)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारत के समाजवादी चिन्तन में डॉ0 राममनोहर लोहिया (1910–1967) का नाम प्रमुख है। लोहिया का व्यक्तित्व बहुमुखी था। वे विद्यार्थी अवस्था से ही राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जुड़े थे। उन्होंने कांग्रेस में रहकर समाजवादी मंच का गठन करने में योगदान दिया। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में द्वितीय पंक्ति के वे प्रमुख नेता थे। उनके भाषण आलोचना तथा आँकड़ों से परिपूर्ण है। भारत के समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में उनका उल्लेखनीय योगदान है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन् 1953 में एशियाई समाजवादी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। समाजवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में उनका विशेष सहयोग था। उन्होंने एक सच्चे गांधीवादी के रूप में गाँधीवाद को समाजवादी चिन्तन में प्रमुखता देने का प्रयत्न किया। सन् 1952 में कांग्रेस समाजवादी दल के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने यह समर्थन किया कि समाजवादी चिन्तन में गाँधीवादी विचारों को और अधिक अंश में सम्मिलित करना चाहिए। उन पर मार्क्स और गाँधी दोनों का प्रभाव था लेकिन न वे पूरे मार्क्सवादी ही बने और न पूरे गाँधीवादी। उन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुसार समाजवाद की मौलिक रचना की।

लोहिया ने भारत में समाजवाद को मजबूत करने के लिए भारतीय सामाजिक व्यवस्था का गहन अध्ययन किया। वे मानते थे कि भारत विकसित राष्ट्र तभी बन सकेगा। जब हमारी सामाजिक व्यवस्था की कमियाँ समाप्त हो जाए। वे भारतीय समाज में व्याप्त कुरितियाँ अर्थात जाति–प्रथा, नर–नारी असमानता, अस्पृश्यता, रंगभेद–नीति और साम्प्रदायिकता को मूल कारण मानते थे।

सामाजिक चिन्तन

जाति–प्रथा का विरोध :– लोहिया का कहना था कि भारतीय समाज में जाति–प्रथा सबसे विनाशकारी है। जो लोग सिद्धान्त में उसे नहीं मानते वे भी व्यवहार में उस पर चलते हैं। जाति की

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

सीमा के अन्दर जीवन चलता है। जीवन के बड़े तथ्य जैसे जन्म, मृत्यु, शादी, ब्याह, भोज और अन्य सभी रस्में जाति के चौखटे में होती है। उसी जाति के लोग इन निर्णायक कर्मो में एक–दूसरे की मदद करते हैं। वे जाति–प्रथा को भारतीय समाज का कोढ़ मानते थे, जिसने जहाँ एक ओर शूद्रों के जीवन को नरक बनाया है, वहीं दूसरी ओर नारी जगत की भी दुर्दशा हई है। वर्ण व्यवस्था ने जाति–प्रथा को जन्म दिया और छुआछूत तथा ऊँच–नीच की भावनाओं को फैलाया। इस प्रकार जाति समाज में असमानता उत्पन्न करती है।[1] नेहरू की भाँति लोहिया ने भी जाति को जड़वर्ग की संज्ञा दी, क्योंकि जाति की जकड़न ने भारतीय सामाजिक जीवन को प्राणहीन कर दिया है। लोहिया ने यह महसूस किया कि भारत इतने समय तक वर्ण–व्यवस्था के फलस्वरूप पिछड़ापन की स्थिति में रहा है अब आंतरिक असमानता को समाप्त करने का संघर्ष प्रारम्भ हो गया है।[2] लोहिया ने वर्ण और जाति में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने यह भी माना कि वर्ण अथवा जाति का आधार स्वभाव तथा कर्त्तव्य विभाजन है।[3] लोहिया के अनुसार कर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिए न कि जन्म की। जन्म के आधार पर किसी ब्राह्मण के पैर छूने का अर्थ है जाति प्रथा को बनाए रखना। लोहिया ने स्पष्ट रूप से माना कि विचार और कार्य में विचित्र अलगाव भारतीय संस्कृति की एक तथ्यतः विशेषता है जिसका मूल कारण जाति व्यवस्था है। जाति एक अपरिवर्तनीय संरचना है जो विचार और कर्म में दोगलापन प्रदर्शित करता है।[4] लोहिया की दृष्टि में हिन्दू समाज की सामाजिक दरिद्रता का मुख्य कारण जाति और नारी की पार्थक्य है। ''मैं मानता हूँ कि जाति और नारी के दो पार्थक्य मुख्यतः हमारी मनः स्थिति के लिए उत्तरदायी है। इन पंक्तियों में साहस और आनंद को ध्वस्त करने की पर्याप्त सामर्थ्य है।''[5] लोहिया ने जाति–प्रथा के कुप्रभाव की चर्चा करते हुए मार्क्स, गाँधी और समाजवाद में लिखा है कि ''जाति अवसर को सीमित करती है, सीमित अवसर योग्यता को संकुचित कर देता है, संकुचित योग्यता अवसर को और आगे रोकती है, जहाँ जाति का प्रभुत्व है, वहाँ अवसर और योग्यता लोगों के संकुचित दायरों में और अधिक सीमित होती चली जाते है।'' लोहिया के अनुसार जाति–प्रथा ने कमजोर वर्गो को न केवल आर्थिक असमानता का शिकार बनाया है बल्कि उन्हें सामाजिक एवं राजनीतिक समता से भी वंचित रखा है।

जाति को डॉ0 लोहिया ने 'एक जड़ वर्ग' के रूप में परिभाषित किया है। क्योंकि जाति में इतनी जकड़न होती है कि एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में प्रवेश के लिए असमर्थ बना दिया जाता है। इस जाति व्यवस्था के कारण भारत का समग्र जीवन निष्प्राण हो गया है। भारत का

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई के नाम पर विभाजित है। हिन्दु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र जातियों में विभाजित तो है ही, साथ ही साथ इन जातियों में भी उप–जातियाँ है। ये समस्त उप–जातियाँ यहाँ तक विभाजित है कि वे एक दूसरे के साथ शादी–विवाह, खान–पान, अथवा जन्म सम्बन्ध करना अपना अपमान समझते हैं।[6]

लोहिया के अनुसार ब्राह्मणी संस्कृति और ब्राह्मणवाद सामन्तवाद और पूँजीवाद का पोषक तथा जनक है।[7] अतः जब तक यहाँ ब्राह्मण और बनियावाद का मूलोच्छेदन नहीं होता है, समाजवाद की कल्पना केवल स्वपन की वस्तु बनकर रह जायेगी। लोहिया के इस विचार में भले ही कटुता का कुछ अंश अधिक हो, किन्तु इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि भारतीय जनता पर इस प्रथा को थोपने वाले उच्च जाति के कुछ ऐसे व्यक्ति रहे, जिन्होंने ऐसी व्यवस्था निर्मित की जिसमें देश के मस्तिष्क का राजा ब्राह्मण और धन का मालिक वैश्य बन बैठा तथा युद्ध एवं सेवाश्रम का उत्तरदायित्व क्रमशः क्षत्रिय एवं शुद्र। इसी अफलातून जैसे कार्य–विभाजन में ऊँच–नीच, छोटे–बड़े शासक–शासित के असमाजवादी भाव आवश्यक परिणाम के रूप में समाविष्ट हुए जो भारत के पतन के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी है। लोहिया ने इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा यह सिद्ध किया है कि भारत की 1000 वर्ष की दासता का कारण जाति है।[8]

लोहिया ने जाति–प्रथा के उन्मूलन हेतु कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। उनके अनुसार ''परिवर्तन के विरूद्ध और यथास्थिति (Status Quo) के लिए जाति–प्रथा एक भयंकर शक्ति है।''[9] अतः लोहिया ने जाति–प्रथा पर चारों तरफ से प्रहार किया– धार्मिक, आर्थिक सामाजिक और राजकीय।

लोहिया ने ब्रह्मज्ञान का मूलाधार बताते हुए यह संदेश दिया कि हम सब मूल रूप में एक ही हैं। अपने व्यक्तिगत संकुचित शरीर और मन से हटकर सब के प्रति अपनापन अनुभव करना ही सच्चा ब्रह्मज्ञान है।[10] इसी प्रकार जाति प्रथा समाप्ति को ही सच्चा अद्वैतवाद मानते हुए उन्होंने कहा, एक तरह तो अद्वैत चला रहे हैं कि संसार एक है, सब समान है, पेड़ समान, गन्ध समान, आदमी समान, देवता समान और दूसरी तरफ, अपने ही अन्दर ब्राह्मण, बनिया, चमार, भंगी, कहार, कापू, माला, माहीगा, न जाने पर पचास तरह के झगड़े खड़े करके, बँटवारा करके अपने देश को हम छिन्न–भिन्न कर रहे हैं।''[11] वास्तव में जाति के आधार पर ऊँच–नीच और बड़े–छोटे का द्वैत बहुत

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

ही विडम्बनापूर्ण है और विशेषतः भारत के लिए जहाँ ''वसुधैव कुटुम्बकम'' ही सम्पूर्ण संस्कृति का आधार रहा हो। किन्तु हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि जाति–प्रथा के नष्ट होने से सच्चा अद्वैतवाद प्राप्त हो जायेगा। परन्तु इतना अवश्य ही है कि जाति–प्रथा एक अत्यन्त सशक्त विभाजक शक्ति है जिसके उन्मूलन की अत्यन्त आवश्यकता है।

लोहिया ने जाति–प्रथा पर आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर प्रहार किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जाति–प्रथा के कारण प्रायः छोटी जातियाँ सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत की जाती है, जिससे दासता उत्पन्न होती है और दासता से हर प्रकार का शोषण होता है। इसके अतिरिक्त जाति–प्रथा के कारण छोटी जातियाँ इतनी अधिक गरीब हो गयी हैं कि वे अपने पूर्ण क्षमता के साथ राष्ट्रीय प्रगति में अपना सहयोग नहीं दे पाती। लोहिया की दृष्टि में पिछड़ी हुई जातियों को आर्थिक दृष्टि से सबल करने और उनमें आत्म–सम्मान जागृत करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय किये जा सकते है, जैसे 'साढ़े छह एकड़वाली बात, या खेतिहर मजदूर की मजदूरी बढ़ानेवाली बात, या ऊँची से ऊँची आमदनी या नीची से नीची आमदनी के बीच में एक मर्यादा बाँधनेवाली बात।''[12] लोहिया की इस विचार के पीछे यही तर्क है कि सामान्यतः छोटी जाति के ही व्यक्ति खेतिहर मजदूर हैं, वहीं भूमिहीन हैं और उन्हीं को आय–मर्यादा की सीमा से कुछ आर्थिक दृष्टि से उन्नत किया जा सकता है।

लोहिया का जाति–प्रथा पर तीसरा प्रहार सामाजिक दृष्टिकोण पर आधारित था। लोहिया के अनुसार जाति–प्रथा भेद–भाव को जन्म देकर समाज को विघटित करती है। जाति–प्रथा से आत्मीयता और सौहार्द की समाप्ती हो जाती है। सहयोग की अनुपस्थिति के कारण सामाजिकता का लोप हो जाता है और राष्ट्रीय विकास अवरूद्ध हो जाता है। सामाजिक दृष्टि से उन्होंने दो उपचारों को रखा– प्रथम सहभोज और द्वितीय अन्तरजार्तिय विवाह। सहभोज के संबंध में उनका विश्वास था कि विभिन्न छोटी–बड़ी जातियों के हजारों व्यक्ति सहभोज में सम्मिलित होकर जाति–नाश हेतु जनपद को प्रभावशाली ढंग से प्रभावित कर सकते हैं और उन्होंने हैदराबाद में ऐसा किया भी था। इस संबंध में उनका दूसरा सुझाव था–अन्तरजातिय विवाह। अन्तरजातिय विवाह का तात्पर्य द्विजों का आपस में विवाह नहीं, अपितु द्विज अद्विज का विवाह है। साक्षात्कार सिद्धांत के प्रतिपादक होने के नाते वे इन सुझावों को भी तुरन्त कार्य रूप देने पर बल देते थे। उनका कहना

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

था कि '' जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिए शूद्र और द्विज के बीच विवाह को योग्यता और सहभोज के लिए इनकार करने पर अयोग्यता मानी जायेगी, उस दिन जाति पर सही मानी में हमला शुरू होगा। वह दिन अभी आना बाकी है।[13]

लोहिया का जाति प्रथा पर चौथा प्रहार राजकीय था। उनका कहना था कि जाति–प्रथा के कारण जनता का अधिकांश भाग राजनीतिक कार्य में सक्रिय भगा नहीं ले पाता। अपवादों को छोड़कर निम्न जातियों में से नेतृत्व का सृजन भी नहीं हो पाता है। अपनी दबी हुई स्थिति के कारण वे अपने मताधिकार का भी प्रयोग नहीं कर पाते। उनका न तो सही ढंग से प्रतिनिधित्व हो पाता है और न ही उन्हें किसी प्रकार का राजनीतिक ज्ञान ही। इन समस्त कारणों से उनकी क्षमता विकसित नहीं हो पाती। जिस कारण वे राजनीतिक कार्यो से उदासीन हो जाते हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र जनता के अधिकांश भाग के सहयोग से वंचित हो जाता है। उनमें राजनीतिक चेतना भरने और राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए लोहिया ने प्रत्यक्ष चुनाव, वयस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया।[14]

भारतीय समाज और समाजवाद के लिए जाति–प्रथा सदैव से एक गम्भीर समस्या रही है। लोहिया ने उचित ही लिखा है कि ''भारतीय जीवन में जाति सबसे ज्यादा ले–डूबे उपादान है।''[15]

नर–नारी समानताः– लोहिया नर–नारी समानता के प्रबल समर्थकों में से एक थे। लोहिया ने नारी के सक्रिय सहयोग के बिना समाजवादी आंदोलन को एक वधूहीन विवाह कहा है– " A socialist movement without the active participation of women is like a wedding without the bride."[16] प्रत्येक कार्य में सहयोग के लिए अपरिहार्य नारी प्राचीन काल से दासता का शिकार रही है। बालिका, युवती, वृद्धा किसी को भी स्वतंत्र नहीं रखा गया है। ''स्त्री बालकपन में पिता के वश में, तरूणाई में पति के वश में, पति के मरणोंपरान्त पुत्रों के वश में रहे।''[17] भारतीय संस्कृति में नर का जन्म सुखद और नारी का दुखद समझा जाता है। इसका मुख्य कारण भारत में व्याप्त दहेज–प्रथा है। वधू की योग्यता, शिक्षा, सुन्दरता आदि तो गौण हैं। वधू–विवाह में वर पक्ष दहेज की अधिक मात्रा से ही प्रभावित होता है। जिस प्रकार गाय दूध की मात्रा से नहीं, उसके बछड़ा नीचे होने से क्रेता के लिए मूल्यवान होती है, उसी प्रकार वधू योग्यता से नहीं, दहेज से ही अच्छे घर में विवाहित

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

होती है। लोहिया ने उचित ही कहा है कि ''बिना दहेज के लड़की किसी मसरफ की नहीं होती, जैसे बिना बछड़ेवाली गाय।''[18] इसके अतिरिक्त विवाह की निमन्त्रण की सुन्दरता, दी जानेवाली वस्तुओं का मूल्य, कण्ठियों की कीमत तथा अन्य तड़क–भड़क वर–वधु के आत्म–मिलन से अपेक्षाकृत अधिक महत्व की समझी जाती है। लोहिया ने उचित ही कहा है कि, ''उनकी शादियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है, जिसे प्राप्त करने का नव–दम्पति प्रयत्न करते हैं, बल्कि बीस लाख की कण्ठियों और पचास हजार से भी ज्यादा कीमती साड़ियों में है।''[19] दहेज की इस घृणित प्रथा की भर्त्सना के लिए शक्तिशाली लोकमत तैयार किया जाना चाहिए और जो युवक इस क्षुद्र तरीके से दहेज लेते हैं, उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाना चाहिए। महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि ''शादी को सौदा नहीं बनाना चाहिए।''[20]

लेहिया बहुपत्नी–प्रथा के भी घोर विरोधी थे। उनका मत था कि यदि पत्नी एक पति रख सकती है तो पति को भी केवल एक ही पत्नी रखने का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने मुस्लिम–धर्म की इस स्वतंत्रता की कटु आलोचना की है, जिसके अनुसार एक मुसलमान को चार पत्नी तक रखने का अधिकार दिया गया है, भले ही कुरान में पत्नियों के साथ सम–व्यवहार का आदेश दिया गया हो। उनका विश्वास था कि जब सर्वगुण संपन्न द्रौपदी अपने पाँच पतियों के साथ सम–व्यवहार न कर सकी तो साधारण मानव के लिए पत्नियों के साथ सम–व्यवहार कर सकना असंभव और अस्वाभाविक है।

विवाह, प्रेम, यौन–आचरण आदि विषयों में वे स्वतंत्रता और समता के पक्षधर थे। उन्हें समानता की चाह थी। उन्हें भारतीय पुरूष के इस विकृत विचार पर बड़ा क्रोध था कि वह अपनी स्त्री को सावित्री की तरह पतिव्रता देखना चाहता है, चाहे वह स्वयं नित्य कई स्त्रियों से मिलता हो।'' सब भूलकर अपनी औरत से उम्मीद करता है कि उसके मन, मस्तिष्क, ख्यालों में सिर्फ वही रहे।''[21]

नारी की समस्या पर लोहिया खुले हुए और साफ ढंग से सोचने वाले व्यक्ति थे। वे यौन–संबंधों की मिथ्या सामाजिक रूढ़ियों के बंधनों में जकड़ कर रखने के सख्त विरोधी थे। उनका मत था कि नर और नारी के बीच यौन–आचरण समतापूर्ण, स्वतंत्र एवं स्वाभाविक संबंध हैं।'' यौन–आचरण में केवल दो ही अक्षम्य अपराध है– बलात्कार और झूठ बोलना या वायदों को तोड़ना। दूसरे

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

को तकलीफ पहुँचाना या मारना एक और तीसरा जुर्म है, जिससे जहाँ तक हो सके बचना चाहिए।''[22] नारी स्वतंत्रता का प्रतिपादन करते हुए लोहिया ने कहा कि आधुनिक पुरूष, अपनी स्त्री को एक ओर सजीव, कांतिपूर्ण एवं ज्ञानी चाहता है दूसरी ओर अधीनस्थ भी। पुरूष की यह परस्पर विरोधी भावनाएँ बहुत ही विडंबनापूर्ण, काल्पनिक एवं अवास्तविक है, क्योंकि परतंत्रता की स्थिति में ज्ञान, सजीवता एवं तेज का प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है ? लोहिया ने नर के इस प्रकार के भरे हुए मस्तिष्क को जागृत किया और कहा, ''या जो औरत को बनाओ परतंत्र, तब मोह छोड़ दो, औरत को कोई बढ़िया बनाने का या फिर बनाओ और उसको स्वतंत्र। तब वह बढ़िया होगी, जिस तरह से मर्द बढ़िया होगा।''[23]

लोहिया नारी को आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र करना चाहते थे। वे नारी को समान कार्य के लिए समान वेतन ही नहीं, अवसर और विधि की समानता ही नहीं, अपितु नारी की प्राकृतिक कमजोरी की क्षतिपूर्ति के लिए विशेष अवसर के पक्षपाती थे। 'प्रथम योग्यता फिर अवसर' उनका सिद्धांत न था, बल्कि 'प्रथम अवसर और फिर योग्यता' को ही वे उचित समझते थे। इस हेतु उनका तर्क था कि 'शरीर संगठन के मामले में मर्द के मुकाबले में औरत कमजोर है और मालूम होता है कि कुदरती तौर पर कमजोर है। इसलिए उसे कुछ स्वाभाविक तौर पर ज्यादा स्थान देना ही पड़ेगा।'' समाजवाद लोहिया के जीवन और विचारों में पूर्णरूपेण घुल–मिल गया है। उनका वाक्यांश ''मैं आधा मर्द और आधा नारी हुँ।'' नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।[24]

लोहिया के अनुसार नारी के सक्रिय सहयोग के बिना राजनीति अपूर्ण है। अतः राजनीति में नारी को नर के समान हिस्सा बाँटना चाहिए। वे तलाक के सिद्धांत को विवाह के क्षेत्र में स्वीकार करते हैं, राजनीति के क्षेत्र में नहीं। अर्थात् राजनीति में नारी को नर के समान सक्रिय भाग लेना चाहिए। उसे राजनीति से तलाक नहीं लेना चाहिए। सदियों से चली आ रही नर–नारी असमानता को लोहिया ने समाजवाद के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा माना। यदि वास्तव में समाजवाद की स्थापना करनी है तो हिन्दु नर के पक्षपाती ''दिमाग को ठोकर मार–मार करके बदलना है। नर–नारी के क्षेत्र में बराबरी कायम करनी है।''[25]

अस्पृश्यता का विरोध :– लोहिया ने अस्पृश्यता को हिन्दु जाति पर बहुत बड़ा कलंक माना और इसको दूर करने के लिए आंदोलन भी किए। अस्पृश्यता जाति–प्रथा का आवश्यक परिणाम है,

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

क्योंकि जो जाति–प्रथा समाज में न्याय–स्थिरता के लिए निर्मित की गयी थी, उसी से कालान्तर में छोटे–बड़े, ऊँच–नीच की धारणा का प्रादुर्भाव हुआ। शनैः–शनैः यह ऊँच–नीच और छोटे–बड़े की भावना इतनी अधिक गहन हो गयी कि शुद्रों के प्रति घृणा का भाव जन्मा, जिसके परिणामस्वरूप उच्च जातियाँ–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य–शुद्रों से शारीरिक अलगाव रखने लगे और उन्हें छूना भी पाप समझने लगें। इस प्रकार छुआछूत की समस्या भारत में उत्पन्न हुई। जिसके समाधान के लिए समय–समय पर प्रयास होते रहे। अस्पृश्यता की इन निशाचारी प्रवृति को स्थूल समाप्त करने के लिए बुद्ध, अशोक, नानक, विवेकानन्द, गाँधी, नेहरू आदि प्रयत्नशील रहे, किन्तु आज भी समाज को इस प्रवृत्ति से मुक्ति प्राप्त नहीं।

लोहिया ने इस दिशा में अत्यधिक प्रयास किये। जाति पर उनके कठोर प्राहर से केवल अस्पृश्यता निवारण ही नहीं होता है, अपितु अस्पृश्य अथवा हरिजन से उच्च जातियों के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होते हैं। उन्होंने शादी–विवाह, भोज–रस्म, रीति–रिवाज सभी में उच्च जातियों की पृथकतावादी नीति की कठोर आलोचना की और इस प्रकार के सिद्धांत और कर्म प्रतिष्ठित किये जिनमें हरिजन, शूद्र तथा उच्च जातियाँ सब की सब एक ही गृह के सदस्यों की तरह जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने हरिजनों को तो समाज में उच्च स्थान दिया ही है, साथ ही साथ पशुओं के लिए भी उचित व्यवहार की प्रेरणा दी।

''अस्पृश्यता अपराध कानून'' के पश्चात् भी विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों को प्रवेश न दिया गया। इस पर उन्होंने हरिजन मंदिर–प्रवेश आन्दोलन चलाया। आन्दोलनकर्त्ताओं के प्रति बहुत निर्दय व्यवहार किया गया। अन्त में उत्तर प्रदेश सरकार को ''मंदिर–प्रवेश अधिकार घोषणा'' विधेयक पारित करना पड़ा और उस पर शीघ्र कार्यान्वयन का आश्वासन देना पड़ा। इस आश्वासन पर टिप्पणी करते हुए लोहिया ने हरिजनों के पूजा–पाठ के समान अधिकारों पर बल दिया, ''सरकार के इस आश्वासन के बाद यह सम्भव हो जाता है कि बनारस और दूसरी जगह के मन्दिरों में हरिजन–सवर्ण भेद खत्म हो।''[26]

अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु लोहिया ने कहा कि हरिजनों को स्वाभिमान, निर्भयता, स्वास्थ्य, सफाई तथा शिक्षा की अत्यावश्यकता है। उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है। क्योंकि राष्ट्र के सर्वागीण उत्थान के लिए हरिजनों का उत्थान अत्यन्त आवश्यक है। हरिजनों का उत्थान

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

करने के लिए उनके साथ ममता का व्यवहार किया जाना चाहिए। इस हेतु हरिजनों के लिए मंदिर, विद्यालय, कुए, तालाब तथा अन्य इसी तरह की सुविधाओं के द्वारा खुलने चाहिए। हरिजनों की उन्नति का आधार उनकी आध्यात्मिक और अन्तःकरण की स्वतंत्रता है। इसीलिए पूजा–पाठ, मंदिर–प्रवेश आदि के समान अधिकार उन्हें प्राप्त होने चाहिए। लोहिया का कहना था कि ''अगर हरिजनों को मंदिर में जाने से रोका जाता है तो और कोइ भी नहीं जा सकेगा।''[27] लोहिया हरिजनों के लिए विशेष अवसर के सिद्धान्त को मानते थे। उनके विचार में औरत, शूद्र, हरिजन, मुसलमान, आदिवासी को साठ प्रतिशत सुरक्षित स्थान होना चाहिए। 'पढ़ना सबको बराबरी का मिले, के सिद्धान्त पर वे सभी विद्यालयों को एक समान कर देना चाहते थे।

अस्पृश्यता एक नकारात्मक शब्द है। हरिजनों में अपने को और अपने में हरिजनों को एकाकार कर लेना ही अस्पृश्यता–निवारण का सही सकारात्मक रूप है, जिसको लोहिया ने मन, वचन, कर्म के द्वारा व्यक्त किया था। अन्तरजातीय विवाह उनके दिल और दिमाग का स्थायी भाव था। इसके अन्तर्गत वे द्विज–अद्विज अथवा ब्राह्मण–भंगिन, चमारिन–सेठ, भंगी ब्राह्मणी से नहीं?''[28] हरिजन कल्याण के लिए सहभोज को वे अचूक अस्त्र मानते थे। उनका कहना था कि ''एक पंक्ति में बैठकर और एक हॉड़िया का पका हुआ भोजन हो तो इसके कुछ असर पड़ेगा।''[29] उनके अनुसार शासकीय सेवा के लिए अन्तरजातीय विवाह एक योग्यता और सहभोज को अस्वीकार करना एक अयोग्यता मानी जानी चाहिए। केवल तभी जाति और अस्पृश्यता की समाप्ती सम्भव होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। इसका प्रधान कारण भारत में व्याप्त अस्पृश्यता की समस्या है। अस्पृश्यता के कारण हरिजन बहिष्कृत, असहाय उदासीन और पतित है। हरिजनों के इस पतन के कारण ही भारत अविकसित है। लोहिया ने तथ्य को को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हम रूसी और अमेरिकीयों के बीच नहीं बैठ सकते। हम उनकी बिरादरी में भंगी से, भिन्न कुछ नहीं। अगर वे अपने देश में चमार, भंगी और शूद्र लोगों को बनाये रखेंगे तो दुनिया की पंचायत में वे भी शुद्र बने रहेंगे। अतः विश्व–पंचायत में बराबरी हासिल करने का सपना साकार करने के लिए द्विजों को अपने 22 करोड़ भाईयों को व्यक्तित्ववान बनाना आवश्यक है।''[30] इस प्रकार लोहिया ने अस्पृश्यता की समस्या को भारत के अन्तर्राष्ट्रीय

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

सम्मान के साथ अपूर्व ढंग से जोड़ा। उनके उपर्युक्त वाक्य से यह भी स्पष्ट होता है कि वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद स्थापित करने के लिए अस्पृश्यता–निवारण आवश्यक मानते थे।

रंगभेद–नीति उन्मूलनः– लोहिया रंगभेद के प्रबल विरोधी थे। वे हर स्तर पर इसका विरोध करते थे। प्रायः लोगों के दिमाग में यह बात घुसी हुई है कि जिसका रंग गोरा होता है वह दिमाग का भी तेज होता है। लोहिया ने इस भ्रम का विरोध किया और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रंगभेद के विरोध में तीव्र जनमत तैयार किया। लोहिया ने जुलाई 1951 में अमेरिका में हॉवर्ड विश्वविद्यालय में भाषणा देते हुए रंगभेद नीति की आलोचना की, और निग्रो लोगों को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने की सलाह दी। गोरे लोगों को श्रेष्ठ मानने की वृत्ति को लोहिया मानसिक रोग मानते थे तथा उनका विचार था कि गोरा रंग सौन्दर्य का प्रतीक इसलिए है क्योंकि उन्होंने 350 वर्ष तक संसार पर राज किया है। यदि यही राज काले रंग के लोग करते तो सौन्दर्य का प्रतीक गोरा रंग नहीं काला रंग होता। जब उन्हें काले रंग होने के कारण अमेरिका में एक होटल में प्रवेश से मना किया तो उन्होंने उसका विरोध किया तो वहीं जेल गये, परन्तु झुके नहीं। हम जानते हैं कि मान्यता, सिद्धान्त या धारण की स्थापना शक्तिशाली लोग ही करते हैं और हर सिद्धांत बनाने वाला व्यक्ति या वर्ग सिद्धान्तों का निर्माण इस प्रकार करता है कि वे उसके हित में हों। सुन्दरता के विषय में व्याप्त धारण का कारण राजनैतिक रहा है। जिस रंग का राज्य स्थापित हो जाता है, वही रंग दूसरे रंगों की अपेक्षा अच्छा समझा जाने लगता है।'' इन रंगों से सुन्दरता का कोई संबंध नहीं है, बुद्धि या दिमाग का संबंध है नहीं।''[31] जिनके पास राज्य और सम्पत्ति होती है, उनके रूप, रंग आदि कवियों, लेखकों और शास्त्रियों के लिए अच्छे बन जाते हैं। लोहिया ने उचित ही लिखा है, "Politics influence aesthetics, power also looks beautiful, particularly unequalled power".[32] इनमें संदेह नहीं कि काले लोगों के साथ अत्यंत अपमानजनक व्यवहार होता रहा है। दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों ने काले लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसा की पशुओं के साथ भी नहीं किया जाता। ट्रान्सवाल के मौलिक संविधान में एक उपवाक्य था, "There shall be no equality between black and white, either in church or in state."[33] जब महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका गये तो काले होने के कारण गोरों ने उनके साथ ऐसा ही व्यवहार किया जैसा कि वे यहाँ पर काले लोगों पर करते थे।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

इस प्रकार रंग–निरंकुशता के लिए गोरे व्यक्ति उत्तरदायी है, काले व्यक्ति भी कम जिम्मेवार नहीं हैं, काले व्यक्ति अपने में हीन भाव रखते हैं। वे विभिन्न कृत्रिम साधनों द्वारा गोरे बनने का प्रत्यन करते हैं। गोरे बनने की उनकी यह प्रवृत्ति संक्रामक रोग की तरह निरन्तर फैलती जाती है और रंग–निरंकुशता को शक्ति प्रदान करती है। काले लोगों को इस प्रकार की मनोवृत्ति त्याग देनी चाहिए। इस सिद्धान्तहीन, भ्रष्ट और अमानवीय धारणा के विरूद्ध एक क्रान्ति की आवश्यकता है। वास्तव में समाजवाद की स्थापना के लिए आर्थिक और राजनैतिक क्रान्ति जितनी आवश्यक है, उतनी ही रंग–भेद के विरूद्ध क्रांन्ति।'' कोई औरत भी दुसरी औरत के बारे में बोलेगी तो कहेगी कि वह बहुत खूबसूरत है क्योंकि वह गोरी है। इंसान का दिमाग इस बारे में भी बहुत खराब हो गया है। इन धारणाओं के खिलाफ लड़ाई होनी चाहिए।''[34]

सांप्रदायिकता की समस्या और निवारण :– धर्म ने विश्व–इतिहास के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। धर्म के मुख्यतः दो पहलू होते हैं आंतरिक और बाध्य। धर्म का आंतरिक पहलू समन्वयवादी और मानवतावादी है। यह आदर्श और शाश्वत होता है। जीवन के समस्त आदर्शों और संस्कृतियों के नैतिक मूल्य इसमें समाहित रहते हैं।[35] धर्म के इस पहलू के महत्व को स्वीकार करते हुए लोहिया ने कहा कि ''मुझे ऐसा लगता है कि धर्म, संप्रदाय के अर्थ में मतलब हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म और फिर हिन्दू धर्म के अंदर भी वैष्णव धर्म, शैव धर्म वगैरह जो कुछ भी हो, उसका अर्थ सबके लिए व्यापक होना चाहिए और वह है दरिद्रनारायण वाला जो सब लोगों के हित का हो।''[36] धर्म के बाह्य पहलू का संबंध धर्म विशेष के रीति–रिवाज, आचार–विचार, पूजा के ढंग तथा उसके बाह्य आचरण के अन्य ढंगों से होता है। धर्म का यह पहलू आडंबरयुक्त, पृथकतावादी तथा संकुचित होता है। इस पहलू से ही विभिन्न संप्रदायों का उदय हुआ है। संप्रदाय ने ही सांप्रदायिकता को जन्म दिया है। धर्म के इसी झूठे और बाहय पहलू के कारण भारतवर्ष में सांप्रदायिकता की समस्या उत्पन्न हुई। हिन्दू और मुसलमान के बीच वैमनस्य की खाई बहुत गहरी की गई। एक दूसरे पर विश्वास नहीं रहा। दोनों धर्मों ने अपने जीवन को परस्पर भय और आशंका की काल कोठरी में बंद कर लिया। इसी के परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। देश–विभाजन के पश्चात भी अधिक नहीं तो कुछ कम रूप में सांप्रदायिकता की समस्या रही है। और आज भी विद्यमान है। लोहिया ने इस प्रकार की विषाक्त स्थिति पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है, ''इस वक्त हिंन्दुस्तान और पाकिस्तान के लोग तो बँटे हुए हैं, खाली हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

हिसाब से नहीं, और भी हिन्दू–मुसलमान जाति के हिसाब से, हम लोगों के दिमाग में कूड़े हैं। आज हिन्दू और मुस्लिम दिमाग दोनों के अंदर कम या ज्यादा कूड़ा भरा हुआ है। दिमाग में भी झाड़ू देनी पड़ती है।''[37] भारत में व्याप्त इस सांप्रदायिक समस्या के कई कारण हैं जिनमें हिन्दू–मुस्लिम मन की मिथ्या धारणा प्रमुख है। हिन्दू और मुसलमान के मनोभावों की विवेचना करते हुए लोहिया कहते हैं, ''आमतौर से जो भ्रम हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन में है, वह यह कि हिन्दू सोचता है कि पिछले 600–700 वर्ष तक मुसलमानों का राज था, मुसलमानों ने जुल्म किया और अत्याचार किया और मुसलमान सोचता है, चाहे वह गरीब से गरीब क्यों न हो, कि 600–700 वर्ष तक हमारा राज था, अब हमको बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं''।[38] भारतीय भूमि में इस सांप्रदायिक बीज को पालने का श्रेय अंग्रेजों पर कम नहीं है। 'फूट डालो और राज करो' की उनकी नीति ने हिन्दू–मुसलमान को 36 का अंक बनाकर रख दिया। पृथक निर्वाचन, भेदात्मक और असमान नीति सांप्रदायिकतापूर्ण मिथ्या आश्वासन आदि ऐसे अचूक अस्त्रों से ब्रितानी शासन ने हिन्दू–मुसलमानों के संयुक्त जीवन को भेद डाला। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान भी 'ब्रितानी साम्राज्य की आखिरी साजिश' का परिणाम है।[39] लोहिया के अनुसार सांप्रदायिकता का कारण बहुत कुछ भारत की वर्तमान राजनीति भी है। लोहिया का कहना है कि भारतीय राजनीतिज्ञ साधारणतः सभाए नहीं करते और न ही सत्य–सिद्धान्तों का प्रचार कर सांप्रदायिकता समाप्त करना चाहते हैं। चुनावों के समय मत और समर्थन की आशा में उनहें भाषण देने पड़ता है, किन्तु उन भाषणों में भी वे हिन्दू–मुसलमान की असंतुष्टि के भय से सत्य कहने से कतराते हैं। हिन्दू–मुसलमानों में परस्पर जो भी घृणा और द्वेष का भाव है, उसको आधुनिक राजनीतिज्ञ दोनों को संतुष्ट करने के लिए ज्यों का त्यों छोड़ देते हैं। लोहिया के स्वयं के शब्दों ''हिन्दुस्तान में जितनी भी पार्टीयाँ है, वे हिन्दु–मुसलमान को बदलने की बात बिल्कुल नहीं करते है। मन में जो पुराना कूड़ा पड़ा हुआ है, जो गलतफहमी है, भ्रम है, उन्हीं को तसल्ली देकर वोट लेना चाहते हैं। आज हमारे राजनीतिक जीवन की सबसे बड़ी खराबी यह है कि हम लोग वोट के राज में, नेता लोग खास तौर से सच्ची बात कहने से घबराते हैं। इसका नतीजा है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का मन खराब रह जाता है, बदल नहीं पाता।''[40]

जब तक इस कटु सांप्रदायिकता का अंत नहीं हो जाता है, समाज में संपन्नता और सहयोग की स्थिति नहीं आ सकती। इसलिए सांप्रदायिकता समाप्ति के प्रयास निरंतर और निष्ठा के साथ होने चाहिए। लोहिया के मत में मुख्यतया पाँच प्रकार के सुधार

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

इस दिशा में किए जा सकते हैं– 1. हृदय परिवर्तन, 2. इतिहास की सही व्याख्या, 3. राजनीति में सुधार 4. भाषा संबधी उदार नीति, 5. धार्मिक प्रयास।

संप्रदायिकता समाप्ति हेतु हृदय परिवर्तन का प्रयास बहुत महत्व का होता है। सन् 1946 ई0 में हिन्दु–मुसलमान का सांप्रदायिकता के कारण खून की नदियाँ बही। उस समय महात्मा गाँधी और लोहिया आदि ने हृदय–परिवर्तन के प्रयास किए। हिन्दू–मुस्लिम एकता और सांप्रदायिकता के विष का शमन ही लोहिया का उस समय प्रमुख कार्यक्रम बना। कलकत्ता में लोहिया ने दल के सदस्यों के साथ 'गॉड फौज' नामक एक स्वयंसेवी संगठन भी बनाया। इसके साथ ही काशीपुर में एक राहत केन्द्र भी खेला गया।[41] कबीर, नानक और सूफी संतों ने इस दिशा में अधिक कार्य किए हैं। कबीर ने तो ''शीशे उतारे भुठ धरे तापै राखे पैर,'' का संदेश देकर आत्म–त्याग तक के लिए हिन्दु मुसलमान को प्रेरित किया।[42] लोहिया ने यह सिद्ध किया कि ऐतिहासिक युद्ध हिन्दू–मुसलमान के बीच नहीं, अपितु देशी और विदेशी के बीच हुऐ। सिल्यूकस विदेशी और कनिष्क देशी, गजनी विदेशी और शेरशाह देशी, हूण विदेशी और राणा सांग देशी, बाबर विदेशी और बहादुर शाह देशी, इस तरह से हिन्दुस्तान का इतिहास पढ़ना होगा।[43] विदेशी मुसलमान यदि हम सबके लिए आक्रामक थे तो देशी मुसलमान हम सबके रक्षक। उनके मत में जो मुसलमान गजनी, गौरी और बाबर को आक्रामक नहीं मानता तथा अशोक, तुलसी और कबीर को अपना पूर्वज नहीं मानता, वह देश की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता। वह हिन्दू जो रजिया, शेरशाह, जायसी और अकबर, रहीम आदि को अपना पुरखा नहीं मानता, वह इस देश की स्वतंत्रता का अर्थ नहीं समझता। लोहिया चाहते थे कि हममे से हर एक आदमी, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, यह कहना सीख जाए कि गजनी, गौरी और बाबर लुटेरे थे और हमलावर थे।[44] वास्तव में लोहिया वाली दृष्टि को इतिहास लिखते समय अपनाया जाए तो भारत में हिन्दू–मुस्लिम के बीच खाई पाटी जा सकती है और परस्पर द्वेष तथा घृणा का वातावरण समाप्त होकर आपस में प्रेम और सहयोग का वातावरण निर्मित हो सकता है जो कि राष्ट्रीय एकता और धर्म–निरपेक्षता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होगा। लोहिया समस्या के मूल को ढूँढ़ने और उसे विनष्ट करने में अन्य समाज सुधारकों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, प्रभावशाली एवं सफल थे। सांप्रदायिकता–समाप्ति के लिए लोहिया चाहते थे कि मुसलमानों के भाषा–भय को भी दूर किया जाए। हिन्दी के नाम से मुसलमानों को संदेश हो सकता है कि शायद उनकी भाषा उर्दू की अपेक्षा की जा रही है। इसके लिए लोहिया ने स्पष्ट कहा था, ''उर्दू जुबान हिन्दुस्तान की जुबान है और

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

उसका वही रूतबा होना चाहिए जो हिन्दुस्तान की किसी जुबान का।''[45] लोहिया का विचार है कि सांप्रदायिकता समाप्त करने के लिए धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता का भी अंत करना आवश्यक है। हिन्दू–मुसलमान एकता के लिए धर्म का बाह्य पहलू एक बहुत बड़ी खाई के रूप में हमारे समक्ष आता है जिसको पाटना चाहिए।[46]

निष्कर्ष :– भारतीय समाज के विकास के लिए लोहिया ने जाति–प्रथा, नर–नारी असमानता, अस्पृश्यता, रंग–भेद नीति और सांप्रदायिकता जैसी कुरीतियों पर गहरा प्रहार किया। लोहिया की सामाजिक चिन्तन ने भारतीय समाज के मस्तिष्क और आत्मा का विकास किया है। उन्होंने जिस सामाजिक समता का प्रतिपादन किया है, वह जनस्पर्शी और क्रान्तिकारी है। लोहिया इसे राजनैतिक और वैधानिक रूप देना चाहते थे। लोहिया ने ही 1000 वर्ष पुरानी दासता को इन सामाजिक विषमताओं की उपज बताया। उनका मानना था कि भारतीय समाज को जब तक सामाजिक समता प्राप्त नहीं होती, तब तक आर्थिक समता कोई अर्थ नहीं रखती। लोहिया की दृष्टि में भारतीय समाजवाद का सामाजिक समता से घनिष्ठ संबंध है।

सन्दर्भ :–

1. बलवान गौतम (संपादित), तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धांत के संदर्भ, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय–दिल्ली विश्वविद्यालय–दिल्ली, 2013, पृ0 217
2. राममनोहर लोहिया, इतिहास चक्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976, पृ0 48
3. ताराचन्द दीक्षित, डॉ0 राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृ0 49
4. राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1985, पृ0 79
5. वही, पृ0 87
6. ताराचन्द दीक्षित, डॉ0 राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013, पृ0 49
7. वही, पृ0 49
8. वही, पृ0 50
9. राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1985, पृ0 79
10. लोहियाः भाषण 27 मई, 1960 हैदराबाद (आर्य समाज की सभा में)
11. लोहियाः धर्म पर एक दृष्टि, पृ0 16

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

12. लोहिया : निराशा के कर्त्तव्य, पृ0 28
13. लोहियाः जाति–प्रथा, पृ0 4
14. लोहिया : निराशा के कर्तव्य, पृ0 29
15. लोहिया : जाति–प्रथा, पृ0 83
16. Dr. Lohia : Marx, Gandhi and socialism, P. 350
17. मनुस्मृति, पंचम अध्याय, श्लोक 148
18. लोहिया : जाति–प्रथा, पृ0 5
19. वही, पृ0 7
20. यू0 एस0, मोहनावि–महात्मा गाँधी का संदेश, पृ0 106
21. रजनीकांत वर्मा, लोहिया और औरत, पृ0 21
22. वही, पृ0 7
23. लोहिया–भाषण, समाजवादी युवजन समाज शिक्षण शिविर, जून 22, 1962
24. 'जन', मार्च 1968, पृ0 96
25. लोहिया, जाति प्रथा, पृ0 165
26. लोहिया : भाषण, 16–19 दिसम्बर, 1956 ई0, नागपुर
27. लोहियाः जाति–प्रथा, पृ0 24
28. वही, पृ0 19
29. लोहियाः देश–विदेश नीतिः कुछ पहलू, पृ0 9
30. लोहिया : जाति–प्रथा, पृ0 35
31. लोहिया : सात क्रान्तियाँ, पृ0 23
32. Dr. Lohia : Interval During Politics, P. 137
33. Everyman's Encyclopaedia, Reset Revised edition, Vol. 3 can to cop (Fourth edition), P. 638
34. लोहियाः सप्तक्रान्ति, पृ0 20
35. ओंकार शरद : लोहिया, पृ0 201
36. लोहिया : धर्म पर एक दृष्टि, पृ0 4
37. लोहिया : देश गरमाओ, पृ0 79
38. लोहिया–भाषण, 3 अक्टूबर, 1963, हैदराबाद
39. 26 अप्रैल सन् 1966 ई0 को लोकसभा में लोहिया द्वारा दिये गए भाषण से।
40. लोहिया : हिन्दू और मुसलमान, पृ0 8

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 10 July 2020

41. ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 187
42. लोहिया : वशिष्ठ और वाल्मीकि, पृ0 9
43. वही, पृ0 9
44. लोहिया : हिन्दू–मुसलमान, पृ0 3
45. लोहिया : भाषा, नवहिन्द प्रकशन, हैदराबाद, 1965, पृ0 6
46. लोहिया : भाषण, 3 अक्टूबर, 1963 ई0 हैदराबाद

◆◆◆

Copyright @ 2020 Authors